Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XIV, Issue No. 1, October-2017, ISSN 2230-7540

शिक्षा और दर्शन का संबंध

Dr. Nisha Rani*

PGT Sanskrit, GGSSS, Sisana, Sonipat

भूमिकाः - भारतीय दर्शन की अक्षुण्ण धारा अनादि काल से प्रवाहित है। दर्शन में मुख्यतः प्रमाणमीमांसा विज्ञान और आचार शास्त्र माने जाते रहे हैं। कालान्तर में दर्शन के विविध रूप विकसित हुए। इनमें धर्म-दर्शन, समाज-दर्शन, राजनीति-दर्शन, विज्ञान दर्शन, शिक्षा-दर्शन, राजनीति-दर्शन, विज्ञान-दर्शन, शिक्षा-दर्शन माने जा सकते हैं। दर्शन शास्त्र में शिक्षा के विषय में विस्तारपूर्वक विचार प्रस्तुत किया गया है। शिक्षा दर्शन के अन्तर्गत वैदिक साहित्य में उल्लिखित शिक्षा-पद्धति, शिक्षा का स्वरूप एवं उद्देश्य एवं शिक्षा का महत्व वर्णित किया गया है। वैदिक कालीन शिक्षा पद्धति को वैज्ञानिक प्रणाली बताते हुए शिक्षा के विविध आयामों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

यह निर्विवाद माना जाता है कि भारत में आदि साहित्य वैदिक साहित्य है। वैदिक साहित्य को आदि साहित्य माना जाता है किन्तु उसका यह अभिप्राय नहीं है कि इस साहित्य में जो वर्णित है वह अविकसित हैं शिक्षा के संबंध में जितना सुव्यवस्थित वर्णन वेदों में मिलता है उतना संभवतः किसी अन्य साहित्य में नहीं मिलता है। हमारे दर्शन शास्त्र में शिक्षा पद्धति का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है।

---------------------------------x---------------------------------

वैदिक साहित्य में शिक्षा-पद्धति का सुव्यवस्थित, कर्मपूर्वक और सर्वांगिण विकास के रूप में वर्णन उपलब्ध है। उस समय यह नियम था कि सब बालक और बालिकाओं को छ से आठ वर्ष की अवस्था तक आचार्यकुल एवं गुरूकुलों में भेज देना चाहिए। बालकों को माता-पिता से अलग रहकर शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार बच्चे एक आयु तक माता के प्रभाव में रहते हैं, फिर पिता के और बाद में आचार्य के।1 उसकी अन्तनिर्हित शक्तियों का विकास पहले माता करती है, फिर पिता और अन्त में आचार्य के पास रहते हुए शिक्षा प्राप्त करके ही वे अपना विकास करने में समर्थ होते हैं। जिस प्रकार माता बच्चे को गर्भ में धारण करती है, वैसे ही आचार्य शिष्यों को गर्भ में धारण कर उन्हें बाह्य प्रभावों से मुक्त रखता है और वे उसी के प्रभाव में रहकर बड़े होते हैं, यह भाव वेद-मंत्र में प्रकट किया गया है।2 बालकों और बालिकाओं को उपनायन संस्कार के बाद आचार्य कुल में निवास करना होता था और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्या ग्रहण करनी होती थी। 'उपवीत' (जिसका-उपनयन संस्कार हो चुका हो) ब्रह्मचारी का उल्लेख ऋग्वेद में आया है और उसे 'देवों का अंग' कहा गया है।3 अथर्ववेद में ब्रह्मचर्य की महिमा का विशद् रूप से वर्णन है।4

शिक्षा का प्रारम्भ उपनयन संस्कार से होता था। इस अवसर पर बालकों और बालिकाओं को यज्ञोपवीत धारण कराया जाता था। वैदिक साहित्य में यज्ञोपवीत को 'परम पवित्र' आयुष्य (दीर्घायु प्रदायक) और शुद्ध कहा जाता था।5 आचार्यकुल में शिक्षा प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों को कोई शुल्क नहीं देना होता था। वे भैक्षचर्या (भिक्षा) द्वारा भोजन, वस्त्रादि प्राप्त किया करते थे, और भिक्षा में उन्हें जो कुछ मिल जाता था, उसे वे आचार्य की सेवा में प्रस्तुत करते थे। आचार्यों, उपाध्यायों, अध्यापकों और अनके शिष्यगणें का निर्वाह प्रधानतया इस भिक्षा द्वारा ही होता था।

आचार्य कुल आचार्य के ही अधीन होता था, और वहीं वहां वेद तथा कल्प का अध्यापन करता था, ब्रह्मचारियों को सदाचारी बनाने का उत्तरदायित्व भी उसी का हुआ करता था। आचार्य के अधीन जो शिक्षक आचार्य कुलों में अध्यापन का कार्य करते थे, वे उपाध्याय कहलाते थे। प्राचीन भारत के शिक्षक न केवल सदाचारी, तपस्वी, त्यागी और विद्वान हुआ करते थे, अपितु अभिमान उन्हें छू तक नहीं सकता था। मनु के अनुसार सुश्रूषा (गरू की सेवा) शिष्य का आवश्यक गुण है। सुश्रूषा के बिना शिष्य के लिए विद्या प्राप्त कर सकना संभव नहीं है। मनु ने लिखा है कि जिस प्रकार खनिज (फावड़े) से जमीन खोदकर जल प्राप्त किया जाता है, वैसे ही सुश्रूषा द्वारा शिष्य गुरू के विद्या प्राप्त करता है।6

प्राचीनकाल में शिक्षा के उद्देश्यों में पुरूष उद्देश्य था ब्रह्मचर्यपूर्वक शिक्षा ग्रहण करना, आधुनिक शिक्षा पद्धति में चरित्रवान् होना शिक्षा का उद्देश्य प्रतीत नहीं होता है। किसी विषय का ज्ञान कराना मात्र आधुनिक शिक्षा पद्धति का उद्देश्य प्रतीत होता है। वैदिक काल में शिक्षा केवल धार्मिक शिक्षा नहीं थी अपितु उस समय में आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक आदि परा और अन्परा समस्त प्रकार की विद्याओं का पठन-पाठन किया जाता था। यद्यपि यह युग वैज्ञानिक युग माना जाता है। सृष्टि का निर्माण हुए लाखों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं इस विशाल काल अन्तराल के पश्चात् भी शिक्षा के विषय में विश्व बहुत सावधान नही है। जो अध्यापक शिक्षा देता है और जो विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करता है उसमें परस्पर क्या-क्या संतुलना होना अपेक्षित है यह ध्यान जितना ऋग्वेद में दिया गया है उतना ध्यान आधुनिक शिक्षा दर्शन में नहीं दिया गया है। इससे आगे वेद में कहा गया है कि यह जो अध्यापन और विद्यार्थी का पढ़ना है ये वास्तव में एक यज्ञ है। जब कोई अध्यापक अपने पवित्र अन्तःकरण से छात्र को अपना ज्ञान प्रदान करता है तो विद्या अथवा ज्ञान छात्र के हृदय में स्थापित करता है। वह ज्ञान प्राप्त करने वाला जिज्ञासु उस ज्ञान को नाना प्रकार के सप्त अर्थात् सात छन्दों में विभाजित करता है।7

वेद और उपनिषदों की शिक्षा का मुख्य आधार ब्रह्मचर्य का पालन करना है, आधुनिक शिक्षा मुख्य आधार ब्रह्मचर्य का पालना करना है, आधुनिक शिक्षा पद्धतियों में केवल विषय की शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाता है। वर्तमान में शिक्षा के विचारकों ने ब्रह्मचर्य के विषय में प्रायः विचार करना समाप्त सा कर दिया है यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं होगा। अगर समाज में ऐसी ही शिक्षा पद्धति रही तो शनैः-शनैः एक स्वयं समाज रोगी समाज में परिवर्तित हो जाएगा। वैदिक साहित्य में नारीजाति को शिक्षा के विषय में भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इतना ही नहीं अपितु पुत्रों की तरह कन्याओं का भी उपनयन संस्कार होता था और वे भी आचार्यकुलों में ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करती हुई विद्या अध्ययन किया करती थी। याज्ञिक कर्मकाण्ड में भी स्त्रियाँ भाग लेती थी। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार पत्नी के बिना यज्ञ पूरा नहीं हो सकता।8 और वह पुरूष अधूरा है जिसकी पत्नी न हो स्त्रीयों को भी सभी विषयों की शिक्षा दी जाती थी। ये भी प्रावधान था कि स्त्री ये सभी विषय अवश्य सीखे। नृत्य, आलेखन, तण्डुल, कुसुम, वार्ताविका, खाने की थाली, फूल आदि सजाने 64 कलाओं से परिपूर्ण होकर नारी समाज का कार्यभार संभालती थी। मनु ने कन्य को वेद पढ़ने का भी उपदेश दिया।10

निष्कर्ष:

इस प्रकार से हम पाते हैं कि-भारतीय साहित्य में धर्म, समाज, आयुर्वेद, राजनीति, विज्ञान के साथ-साथ शिक्षा के विषय में भी विपुल साहित्य मिलता है। और बहुत ही गौरव की बात है कि भारतीय दर्शन के इतिहास में शिक्षा दर्शन को भी सम्मिलित किया गया है, यद्यपि शिक्षा को भारतीय परम्परा मे एक प्रकार से प्राण के रूप में अधिष्ठित किया जाता रहा है। फिर भी यह आवश्यक है कि शिक्षा के मौलिक सम्प्रत्ययों का विवेचन साहित्य में समाज में होता रहे। यहाँ पर मेरे द्वारा शिक्षा और दर्शन के विषय में विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है। शिक्षा-दर्शन में वैदिक साहित्य में उल्लिखित शिक्षा पद्धति, शिक्षा का स्वरूप् एवं उद्देश्य और शिक्षा दर्शन में ब्रह्मचर्य का महत्व वर्णित किया गया है। वैदिक कालीन शिक्षा पद्धति को वैज्ञानिक प्रणाली बताते हुए शिक्षा के विविध आयामों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है। स्त्री शिक्षा आदि का भी यहाँ वर्णन किया गया है। स्त्रीयों को आदिकाल से ही समान शिक्षा के अवसर प्राप्त हैं और वह किस प्रकार से अनेक प्रकार की शिक्षाओं में पारंगत होकर अपने परिवार का तथा समाज का कल्याण करती थी। यहाँ अभिप्राय यह भी है कि वैदिक युग में जिस प्रकार पुरूष समस्त ज्ञान-विज्ञानों का विद्वानों होता था, उसी प्रकार स्त्री को भी समस्त विषयों की विदुषी होने का समान अवसर थे। उपनिषदों में भी अनेक ऋषिकाओं का वर्णन है। इनमें गार्गी, मैत्रयी आदि विदुषी महिलाओं के नाम विख्यात हैं। वेद के अनुसार स्त्रियाँ युद्ध में जा सकती थी, राजनीति में भाग लेकर राजव्यवस्था में प्रमुख भाग अदा करती थी।

अतः निष्कर्षतः शिक्षा और दर्शन का गहरा संबंध है।

सन्दर्भ सूची:

'मातृमान पितृमान आचार्यवान् पुरूषो वेद' (शतपथ-14.6.105)

"आचार्य उपनयमानों ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।" (अथर्ववेद-11.5.3)

'ब्रह्मचारी चराति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्ग्म्।' (ऋग्वेद-10.109.5)

अथर्ववेद-11.5.17

पास्करगृहसूत्र-2.2.11

मनुस्मृति-2.218

ऋग्वेद-10.71.3

शतपथ ब्राह्मण- 5.1.6.10

तैŸिारिय ब्राह्मण-2.2.2.6

अथर्ववेद- 11.5.4

Corresponding Author

Dr. Nisha Rani*

PGT Sanskrit, GGSSS, Sisana, Sonipat

E-Mail – nishashashi00@gmail.com